भ्रम का मकड़–जाल (सभी ओर भ्रम की स्थिति)

प्रधानमंत्री ने पांच सालों में दुगनी खेती आय की घोषणा की है। कृषि अर्थशास्त्री यह तर्क देते हैं कि पांच सालों में दुगनी कृषि आय संभव नहीं है क्योंकि आय को 14 फीसदी सालाना की दर से बढ़नी होगी, जो कि आज से पहले दुनिया में कभी भी कहीं भी नहीं हुई है। मैं आरामपसंद इन अर्थशास्त्रियों से पूरी तरह असहमत हूँ। दो अच्छे मानसून और अगले वर्ष से प्रत्याशित तौर पर अंतर्राष्ट्रीय उत्पादों की कीमतों के चक्र में बढ़ोतरी ये सब करेगी। कृषि के ऐसे अत्यंत न्यूनतम आय आधार के साथ आगामी 10 सालों में तिहरी कृषि आय संभव तो है पर इसे मौजूदा नीतिगत घोषणाओं की संरचना के भीतर कर पाना संभव नहीं है। ऐसे भी विरोधाभास हैं जिन्हे जानबूझकर अनदेखा किया जा रहा।

विडम्बना यह है, आधे से अधिक किसानों के पास संस्थागत साख की पहुंच ही नहीं है। उन्हें किसी कृषि ऋण माफी से कोई भी फायदा नहीं मिलता और न ही उन किसानों को मिलता है जिन्होंने अपने कर्जे चुका दिए हैं। संयोग से ज्यादातर किसानों को सस्ते ऋण की सुलभता से फायदा मिल सकेगा, लेकिन ऋण–माफी की मांग करना ही ऐसा है जैसे कि क्रिमी–लेयर वर्ग के लिए जातिगत आरक्षण की मांग करना। उदाहरण के लिए, एक ही समुदाय के सदस्यों को बड़े पैमाने पर इसके लाभ को वंचित रखते हुए आईएएस अधिकारियों के बच्चों के लिए जातिगत आरक्षण।

न्यूनतम समर्थन मूल्य (एमएसपी) के लिए मांग तो इससे भी अधिक हैरान करने वाला है, न्यूनतम समर्थन मूल्य कार्यक्रम के अधीन 20 फीसदी से कम किसानों के उत्पादों की नियमित तौर पर खरीदी की जाती है लेकिन किसान संगठन इसके लिए सबसे अधिक हल्ला मचाते हैं और इसकी परवाह कभी नहीं करते कि बाकी 75 फीसदी किसानों द्वारा उपजाई गई फसल का क्या होगा।

ज्यादातर किसान संगठन एक ऑर्गेनिक कृषि याने 'पारंपरिक खेती' की जरूरत के बारे में बोलते हैं लेकिन केवल कुछ ही इस उर्वरक सब्सिडियों के विरोध में बोलते हैं। ये उनके लिए स्वाभाविक होना चाहिए जो उर्वरक के उपयोग के विरोध में उर्वरकों के उपयोग में कमी लाने की दिशा में उर्वरक सब्सिडी को समाप्त करने की बात करते हैं जिससे कि एक उच्चतम उद्देश्य को प्राप्त किया जा सके। लेकिन ऐसा बिल्कुल भी नहीं है। दोगली बातें करने वाले किसान नेता और संगठनों ने किसानों का हमेशा हताश किया है, किसान भ्रमित और विभाजित हैं।

किसान नेताओं और राजनैतिक पार्टियों के लिए आजकल यह एक फैशल बन गया है कि एम.एस.स्वामिनाथन समिति रिपोर्ट की सिफारिशों को लागू कराने के लिए चिल्लाएं, जबकि उन्होंने रिपोर्ट को न तो देखा ही है और न ठीक ढंग से पढ़ा ही है। नारेबाजी करने से उन्हें केवल तुरंत तौर पर कुछ समर्थन जरूर मिल जाता है, पर और कुछ नहीं।

एक ओर सरकार अनुवांशिक तौर पर संशोधित किए गए मक्के के आयात पर प्रतिबंध लगाती है वहीं दूसरी ओर लगभग 10 हजार करोड़ के अनुवांशिक तौर पर संशोधित सरसों तेल के आयात को अनुमन्य करती है। यह सब केवल इसलिए कि खाद्य तेल आयातकों की लॉबी बहुत ही ताकतवर है।

पूरे भारत में नकली कीटनाशकों की बिक्री या किसानों को किसी गलत कीटनाशक को खरीदने की सलाह देने के लिए दस साल की सजा का प्रावधान होना चाहिए। यदि बिहार असली शराब की बिक्री के लिए दस साल की सजा का कानून बनाकर लागू कर सकता है, तो हम किसान कुछ भी बेतुकी मांग नहीं कर रहे हैं और ऐसा ही होना चाहिए हम मानते हैं।

एक समृद्ध भारत की रीढ़ के रूप में किसान

* श्री आर. के. पचौरी

भारत का लक्ष्य एक कृषि उन्मुख देश होना चाहिए था। और चूंकि ऐसा नहीं है, एक नई कृषि नीति को लागू किए जाने की जरूरत है ताकि किसानों को सिंचाई सुविधाएं, बाजार, बुनियादी संरचना इत्यादि सुलभ हो सके।

''मैं तो यह कहूँगा कि यदि गांव तबाह होते हैं, तो भारत भी तबाह हो जाएगा। भारत देश भारत नहीं रह जाएगा। दुनिया में इसके स्वयं का मिशन कहीं खो जाएगा। गांवों का पुनर्जीवन तभी होगा जब गांवों का और दोहन नहीं हो।'' ये कथन थे महात्मा के, जो यह मानते थे कि भारत तब तक विकासित या समृद्ध नहीं बन सकता जब तक कि हमारे ध्यान का केन्द्र बिन्दु गांवों के विकासित करने के महत्व से हटता रहेगा। आज, हम राष्ट्रीय स्तर पर एक बड़े टकराव का सामना कर रहे हैं क्योंकि राजनैतिक पार्टिया एक दूसरे पर किसान–विरोधी होने का लांछन लगा रही हैं। हालांकि, हर आने वाली सरकारें किसानों के हितो के बारे में लापरवाह रही हैं। वे एक ऐसे समाज के निर्माण में असफल रही हैं जिसकी जड़े ग्रामीण क्षेत्रों को प्रोत्साहित करती हों तथा उसके सर्वांगीण विकास के लिए हो।

वास्तव में, भारत में विकास की शैली पर कभी भी कोई बौद्धिक परिचर्चा हुई ही नहीं है। हमें हमारे समाज की नैतिकता, हमारे समग्र संसाधन के बंदोबस्ती और जनसांख्यिकीय वास्तविकताओं को बनाए रखना चाहिए, जो कि भारत की आबादी के आकार व फैलाव की विशेषता है। सही रूपों में, स्वतंत्रता के शुरूआती वर्षों में, हमने फैबियन समाजवाद के ऐसे स्वरूप के ईर्द–गिर्द घूमते रहे, जो कि भारी उद्योगों पर केन्द्रीयकृत विकास पर जोर देने के साथ–साथ सोवियत मॉडल की ओर आकर्षित रहा। हाल के वर्षों में, हम उत्तरी अमेरिका के उपभोक्तावाद और पूंजीवाद मॉडल पर संचालित शैली की ओर अग्रसर हुए हैं।

दुर्भाग्य से, इन आयातित मानदंडो और उनके अव्यवस्थित कार्यान्वयन ने आर्थिक असमानताओं की खाई को और अधिक चौड़ा कर दिया है, देश भर में ग्रामीण–शहरी विभाजन को और अधिक गहन बनाया तथा किसानों के लिए संकटों को और विकराल बनाया है। इस प्रवृत्ति का जारी रहना हमारे समाज पर प्रतिकूल प्रभाव डालेगा। यदि हम 1950 और 1960 के दशकों पर नज़र डालें, तो हम यह निष्कर्ष निकाल सकते हैं कि कृषि विकास की कुंजी थी। साथ ही, सूक्ष्म, लघु और मध्यम स्तर के उद्यमों के विकास के लिए बुनियादी संरचनाओं के विकास पर भी महत्व दिया जाता था, जिनमें बड़े पैमाने पर रोजगार के अवसर निहित थे।

सिहांवलोकन करने पर, एक स्वतंत्र राष्ट्र के रूप में भारत को अपनी शुरूआत ही एक कृषि आधिक्य राष्ट्र बनने के लिए करना चाहिए था। दूसरे राष्ट्रों के साथ तुलना, जाहिर सी बात है, अनुचित होगा, लेकिन थाइलैंड का उदाहरण हमारे लिए एक सीख देता है। 1960 के दशक में, थाइलैंड ने बड़े पैमाने पर सुधारों को प्रोत्साहित किया और ऐसे कार्यों को हाथ में लिया जिसके द्वारा यह कृषि से बड़े मौद्रिक आधिक्य का सृजन करने में सक्षम रहा, और इसने इसे औद्योगिकीकरण के प्रारंभिक चरणों के लिए महत्वपूर्ण पूंजी भी प्रदान की।

आज भी, भारत की अर्थव्यवस्था मानसून की अनियमितताओं के बीच एक बंधक बनी हुई है। औद्योगिक गतिविधियों का स्तर और माल तथा सेवाओं की मांग अलग–अलग मौसम में कृषि से आय व ग्रामीण क्रय शक्ति से भारी तौर पर प्रभावित होती है। इसलिए, सूक्ष्म–आर्थिक संदर्भ में, हमने ग्रामीण क्षेत्र की महत्ता को हमारे देश की भलाई के लिए नहीं समझा है।

भारत का कृषि उत्पादन क्षेत्र चीन से कहीं अधिक बड़ा है। फिर भी, खाद्य एवं कृषि संगठनों की सांख्यिकी के आधार पर, वर्ष 2010 में, चीन ने 483.3 मिलियन टन अनाज का उत्पादन किया और भारत ने केवल 250. 8 मिट्रिक टन का। प्रति हेक्टेयर पैदावार के संदर्भ में, वर्ष 2010 में चीन ने 55 एचजी/हेक्टेयर दर्ज किया और भारत ने केवल 27 एचजी/हेक्टेयर का। यहां तक कि इंडोनेशिया और ब्राजील की पैदावार अधिक थी तथा संयुक्त राज्य, फ्रांस और जर्मनी ने इस क्षेत्र में 70 एचजी/हेक्टेयर पैदावार की।

बेशक, कृषि नीति का एक अहम पहलू है कि यह पोषणीयता और पर्यावरण की सुरक्षा को सुनिश्चित करता हो। इस संदर्भ में, चीन और भारत के कई इलाकों में भूजल संसाधन, नदियां तथा अन्य सतह जल निकाय व बड़े पैमाने पर उपजाऊ भूमि प्रदूषित और विषैले हो चुके हैं। कृषि पैदावार को बढ़ाने ने नए उपायों को ऑर्गेनिक तकनीकियों के ईर्द–गिर्द विकसित किया जाना चाहिए, जिसमें किसानों की सहायता के लिए पर्याप्त अनुसंधान और नवाचार तथा विस्तार सेवाओं की भी जरूरत होगी।

अतीत में कई दशकों की विफलताओं में से एक रहा है पूरे देश में कृषि अनुसंधान तथा विस्तार प्रणाली की प्रभाविता में कमी। भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद के प्रथम महानिदेशक, बी.पी. पाल, एक बौद्धिक नेता और दूरदर्शी वैज्ञानिक, जिन्होंने देश की हरित क्रांति की परिकल्पना कर इसकी शुरूआत की थी, ने एक मिशनरी उत्साह से प्रेरित होकर देशव्यापी बहुआयामी संगठन की स्थापना की।

एक ओर जहां भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद ने इन वर्षों में व्यापक तौर पर विस्तार किया है, यह अपने बहुआयामी, दूरदर्शी संसाधन की प्रभावित को कहीं खो चुका है। अब यह नौकरशाही के जाल में फंस चुका है और इसमें अब स्वायत्तता का अभाव है एक ऐसा रोग जो भारत के कई क्षेत्रों को अपनी चपेट में लिए हुए है। दोनों, केन्द्र और राज्य की सरकारें अक्सर यह मानती हैं कि ऋण देने और आसानी से वित्त मुहैया कराने मात्र की आवश्यकता है जिससे कि कृषि में उच्चतम उत्पादकता और प्रगति को हासिल किया जा सकता है। लेकिन वास्तव में, कृषि और इससे जुड़े क्षेत्र कई विविध कारकों की मजबूती पर विकसित होते हैं, जिसमें शामिल हैं समुचित सिंचाई व्यवस्था, बाजारों का सुलभ होना, तर्कसंगत मूल्य समर्थन योजनाएं, कोल्ड चेन की मौजूदगी (खासकर फलों और सब्जियों के लिए), और लगाातार नवाचार जिससे कि ''हर बूंद अधिक फसल' तथा सभी संसाधनों के कुशल उपयोग को सुनिश्चित किया जा सके।

कोल्ड चेनों में विद्युत निविष्टि की जरूरत होती है, जिसे आज नवीकरणीय उर्जा स्रोतों से एक विकेन्द्रीकृत आधार पर पैदा किया जा सकता है। उर्जा और संसाधन संस्थान ने एक ऐसी तकनीक को स्थापित किया है जो उत्तर प्रदेश के सीतापुर गांव में कार्य कर रहा है, जहां गावं के लिए बिजली और नष्ट होने वाले उत्पादों के भंडारण के लिए विद्युत का उत्पादन कृषि अपशिष्ट को गैसीकृत करने के माध्यम से किया जा रहा है। कृषि क्षेत्र का तेज विकास औद्योगिक प्रगति की नई लहर लाएगा, जिससे कृषि मशीनरी और बुनियादी संरचना का सृजन होगा।

जल की उपलब्धता के मामले में, हमें जलवायु परिवर्तन पर अंतर सरकारी पैनल के निष्कर्षों को ध्यान में रखना होगा, जो स्पष्ट तौर पर आवृत्ति और भारी वर्षा सहित चरम घटनाओं की तीव्रता में वृद्धि को दर्शाता है। बुनियादी ढांचे और अनुकूलन उपायों की तत्काल आवश्यकता है, जिसके द्वारा किसानों की भलाई के साथ–साथ उनकी आजीविका को सुरक्षित किया जा सकता है। सबसे अहम बात यह है कि कृषि अनुसंधान प्रणाली को फसलों की सूखा प्रतिरोधी किस्मों को विकसित करने की जरूरत है ताकि वर्षा के अभाव में किसानों के पास विकल्प मौजूद हों।

जल का उन्नत प्रबंधन भी पूरे देश में सूखे के प्रतिकूल प्रभाव को हल्का करेगा, जैसा कि बुनियादी ढांचों का सृजन भारी वर्षा के मामले में खड़ी फसल को बचाने में सहायक होगा। पूर्व चेतावनी प्रणाली भी किसानों के लिए काफी मददगार होगी। भोजन और खाद्य उत्पादों के मूल्य वार्षिक तौर पर वैश्विक बाजार में उतरते–चढ़ते रहेंगे, लेकिन कृषक समुदाय के लिए समुचित नीतियों और मूल्य समर्थन कार्यक्रमों के साथ व्यापक तौर पर फैली फसल बीमा योजनाएं आय में सामयिक गिरावट की गतियों के नकारात्मक प्रभावों का मुकाबला कर सकती हैं।

पूरे देश में समग्र तौर पर आर्थिक गतिशीलता के लिए कृषि आधिक्य एक प्रमुख शक्ति हो सकती है। बद्त्तर खाद्य आपूर्ति की ओर तेजी से बढ़ती दुनिया में, कृषक समुदाय के लाभ के लिए बढ़ते राजस्व को पैदा करने के अलावा, भारत में कृषि आधिक्य का उपयोग गरीबों तथा खाद्य की कमी झेल रहे राष्ट्रों की मदद के लिए किया जा सकता है।

पूरी तरह एक नई और दूरदर्शी नीति को लागू किया जाना चाहिए जिससे कि भारत के कृषि आधिक्य राष्ट्र बनने को सुनिश्चित किया जा सके, जहां कि ग्रामीण विकास के एक नए युग की शुरूआत होगी।

(लेखक उर्जा एवं संसाधन संस्थान के महानिदेशक हैं)

श्री प्रवेश शर्मा, पूर्व प्रबंध निदेशक, छोटे किसान कृषि व्यवसाय संघ

मैं कृषि मंत्रालय की एक एजेन्सी छोटे किसान कृषि व्यवसाय संघ का नेतृत्व कर रहा था और एक प्रकार से हम ट्रिकल–डाउन प्रभाव (अमीरों से गरीबों की ओर धन का प्रवाह होना) को देख रहे थे, प्रोफेसर सेन एवं उनके सहयोगी अर्थशास्त्रियों के समान ही जैसा वे इसे देखते हैं, उत्पादकों पर जो वास्तव में शायद यहां पर नहीं दर्शाये गए हैं, के लिए सरकारी नीतियों एवं बजट का ट्रिकल–डाउन प्रभाव है, और मेरा मानना है कि शायद अब की बार भारत की कुल जनसंख्या का 86 प्रतिशत किसानों को इस बजट में शामिल किया जा सकता है। क्योंकि भारत के 86 प्रतिशत किसान या तो छोटे हैं या फिर सीमान्त। और वास्तव में इन आंकड़ों को ठीक से समझा जाना चाहिए क्योंकि असल में सभी किसानों में से 65 प्रतिशत सीमान्त हैं, इसका मतलब उनके पास 1 हेक्टेयर से कम जमीन है। अन्य 20 प्रतिशत छोटे किसान हैं जिसका मतलब उनके पास लगभग 5 हेक्टयर तक जमीन है। तो किस प्रकार बजट की घोषणाओं से लोगों को वास्तव में लाभ प्राप्त होगा। मैं ग्रामीण विकास की ओर पुनर्अभिमुखीकरण का स्वागत करता हूँ। जबकि यह सत्य है कि बजट वास्तव में सरकार की आय एवं व्यय के बारे में होता है फिर भी नीति की मंशा है कि यह संकेत बहुत ही महत्वपूर्ण है। इसलिए मेरे विचार में मैं यह देखना चाहता हूँ कि किस प्रकार यह बजट कृषि से जुड़ी समस्याओं को संबोधित करता है; मैं भारत में मौजूदा तौर पर कृषि के आपस में जुड़े तीन संकटों के बारे बताता हूँ। और अधिक संक्षेप में मैं बताऊंगां कि ये तीन संकट क्या हैं और उसके बाद मैं यह देखने का प्रयास करूगां कि किस प्रकार बजट इन तीन संकटों पर प्रभाव डालेगा या नहीं।

तो पहला संकट, और कई लोगों का प्रश्न यह भी है कि क्या इसको संकट या समस्या कहना सही है, जिसे मै क्या कहूँ 'जोखिम कम किए बगैर कृषि का व्यावसायीकरण'। वर्तमान में कृषि के सकल घरेलू उत्पाद का तीन चौथाई उच्च मूल्य कृषि के योगदान से है जिसका मतलब बागवानी, पशुधन, मुर्गीपालन, मछली पालन से है। सभी तथाकथित गैर–कृषि पशुपालन क्षेत्र हैं। लगभग 20 वर्ष पूर्व यह अनुपात उल्टा था। तब तीन चौथाई मूल्य मुख्य उपज जैसे आनाज, दालें, तिलहनों से आते थे और केवल एक चौथाई उच्च मूल्य कृषि से आता था। उपभोक्ताओं के मांग की बदलती प्रकृति के कारण, बाजार ने दूध, प्रॉल्ट्री, अंडे, मांस के लिए अधिक मांग का संकेत दिया एवं किसानों ने इस ओर प्रतिक्रिया व्यक्त की। इसलिए वर्तमान में, कृषि के सकल घरेलू उत्पाद का तीन चौथाई उच्च मूल्य कृषि से आता है किन्तु यह बदलाव पर्याप्त रूप से जोखिम को जाने बिना घटित होता है जो इस व्यावसायीकरण के साथ आता है और मैं, आपको यह कैसे होता है, इसके कई उदाहरण दूंगा।

अब फसल क्रेडिट आंकड़ों का रु.9 लाख करोड़ का आंकड़ा है, लेकिन सबूत दिखाते हैं कि यह राशि बैंकों को कृषि ऋण के रूप में संवितरित की गयी है, क्रेडिट का लगभग 60 प्रतिशत व्यापारियों को गोदाम प्राप्त करने के लिए दे दिया जाता है, यह कृषि ऋण नहीं है। और अलग–अलग राज्यों में यह भिन्न है, कुल राशि के एक चौथाई का लगभग तीसरा भाग वास्तव में किसान के हाथ में कृषि ऋण के रूप में जाता है। लेकिन यह कृषि ऋण अत्यधिक रूप से, क्या मैं कह सकता हूँ, पशुपालन कृषि के पक्ष में है। तथ्य यह है कि किसान बागवानी या पॉल्ट्री, दुग्ध या पशुपालन में निवेश कर रहें है जबकि असल में इन व्यवसायों या कृषि में इन गतिविधियों के लिए सब्सिडी वाले फसल ऋण उपलब्ध नहीं हैं। ये गतिविधियां अभी भी 36 प्रतिशत से शुरू होकर 120 प्रतिशत तक की ब्याज दरों के साथ अनौपचारिक ऋण बाजार द्वारा वित्त पोषित की जा रही हैं, और यह केवल जोखिम की पृष्ठभूमि पर निर्भर हैं। इसलिए सादे तौर पर, आप जानते हैं एक निश्चित आंकड़े दिखाकर और महत्वपूर्ण उछाल प्रदर्शित कर तथा निश्चित रूप से लगभग एक दशक के लिए 30 प्रतिशत की वृद्धि दर्शाई जा रही है, एवं संयुक्त प्रगतिशील गठबंधन ने कृषि ऋण के दोहरीकरण का लक्ष्य रखा और यह वास्तव में यह हुआ भी। लेकिन मैं कहना चाहता हूँ कि 'नीति की अधिकता' के समान ही आवंटन का समान अनुपात जारी रखा गया है। इसलिए मूल बात करने के लिए वापस आने हेतु, व्यावसायीकरण जोखिम में कमी

किए बिना इसे किया जाना चाहिए। सबसे खराब परिणाम आत्महत्या हैं, जिन्हें आप कॉटन बेल्ट (कपास उत्पादक क्षेत्र) या व्यावसायिक कृषि बेल्ट में देखते हैं। आपने देखा नहीं होगा कि आजीविका में खेती अलग–अलग मानव संकट हैं क्योंकि वे बाजार से जुड़ी हुई फसलें नहीं हैं। लेकिन कपास की कीमतों के पतन के कारण, चीन से मांग की कमी के कारण और वैश्विक स्तर पर माल की कीमतों में सामान्य मंदी के कारण में हम यह संकट देख रहें हैं।

दूसरा संकट, इसे मैं एक 'निवेश संकट' कहता हूँ। भारतीय रिज़र्व बैंक (आरबीआई) की पिछली रिपोर्ट कहती है कि केवल 40 प्रतिशत किसान ही संस्थागत ऋण का उपयोग करने में सक्षम हैं। इसलिए 60 प्रतिशत, यहां तक कि वे कृषि पशुपालन कर रहे हैं, साहूकारों के पास जा रहे हैं। छोटे और सीमान्त किसानों के बीच संस्थागत ऋण की पहुंच केवल 15 प्रतिशत है। ये भारतीय रिजर्व बैंक के आंकड़े हैं, ठीक है। इसलिए यदि इस विशाल पलटन का 85 प्रतिशत बाजार से उधार ले रहा है तो एक बजट अथवा ऋण का बढ़ा हुआ परिव्यय, छूट के स्तर की ज्यादा परवाह किए बगैर ज्यादा फर्क नही करेगा।

और तीसरा, जो प्रभाव में है, इन दोनों मूल संकटों को जन्म देता है जिसे मै क्या कह सकता हूँ 'अस्थिर नीति का संकट'। इसे प्रत्येक सरकार, दुर्भाग्य और सौभाग्य से, एक लोकतांत्रिक संदर्भ में, चुनावी चक्र को संबोधित किए जाने वाला, कुछ लघु अवधि के लक्ष्यों को संबोधित करने के लिए और कोई भी 5 या 10 साल को छोड़ दो, 3 साल के लिए भी नहीं याद रखता है। इसलिए आपके पास तदर्थ या कामचलाऊ जवाब हैं– प्याज की कीमत दिल्ली में बढ़ रही हैं, चलो प्याज आयात करते हैं, प्याज की कीमतें कम हुई तो यह बंद हो जाता है, आपको पता है दिल्ली प्रेस में सबकुछ ठीक है, यदि आपके पास दोबारा से बड़ा मुद्दा है, इसके सामने कुछ पैसा फेंको और शायद, यह अस्थायी रूप से हल हो जाता है।

इसलिए ये तीनों आपस में जुड़े हुए संकट हैं क्या, कुछ हद तक, कैसे ये कृषि की सतह के नीचे बुदबुदा रहें हैं और कैसे वर्तमान बजट इन तीन बातों को संबोधित करता है। इस प्रकार दर्जनों ऐसे मुद्दे हैं, किन्तु मै अपने आपको इन तीन तक सीमित रखता हूँ जिनको मैं कृषि क्षेत्र में चल रही समस्याओं की कुंजी और सबसे महत्वपूर्ण मानता हूँ।

इसलिए कल के बजट से निकली हुई पहली बात यह है कि यहां पर प्रतिक्रिया है, किन्तु यह आंशिक प्रतिक्रिया है, यह एक अधूरी प्रतिक्रिया है, और फिर से मुझे ऐसा कहने के लिए माफ करें कि यह एक अनौपचारिक प्रतिक्रिया है। यह निश्चित रूप से एक समग्र प्रतिक्रिया नहीं है जो कृषि के आपस में जुड़ने की प्रकृति को देखना चाहती हो, यदि हम एक सतत, एकीकृत मूल्य श्रृंखला के रूप में कृषि को लें। तो आप कुछ हिस्सों को संबोधित करें, जहां पर स्थिति बहुत ही खराब नासूर की तरह है, आप प्रयास करें एवं इस पर मरहम हेतु कुछ उपाय करें, यदि वहां पर खरोंच है, आप केवल छोटा–सा बैन्ड–एड लगाते और इसके सहारे साथ दूर तक जाने की उम्मीद करते हैं। और मुझे लगता है कि, कई जमीनी हकीकत जिनके लिए बेशक सरकार के पास बड़ी राशि की जानकारी है, बजट के ठीक पहले मैं देखने के लिए बेहद उत्सुक हूँ कि क्यों वहां पर अधिक की प्रगति की जा रही है, जैसे किराएदारी सुधार का मुद्दा। मेरे पास नीति आयोग से निकाला गया बहुत ही उच्च प्रोफाइल का एक दस्तावेज है। और मैने सोचा शायद यह एक संकेत है कि बजट राज्यों को इस महत्वपूर्ण मुद्दे से संबंधित कुछ प्रोत्साहन प्रदान करने का प्रयास करेगा। वर्तमान में हमारे कृषि योग्य क्षेत्र का लगभग 20 प्रतिशत पट्टे पर खेती है। अब उन पट्टेदारो को कोई मदद नही जा रही है इसलिए या तो आप जमीनदारी के उन्मूलन के साथ–साथ ऋण का परिव्यय अधिक कर दें, क्योंकि दुर्भाग्यवश, ये वो लोग नही हैं जो उपयोग करने में सक्षम हैं, उनके पास कागज का कोई टुकडा नही है, हमने इस देश में किराएदारी को भी समाप्त कर दिया है किन्तु किराएदारी मौजूद है और राष्ट्रीय प्रतिदर्श सर्वेक्षण का डाटा स्पष्ट रूप से बताता है कि छोटे एवं सीमान्त किसानों की लगभग 80 प्रतिशत भूमि को पट्टे पर दिया गया है, किन्तु केवल

पश्चिम बंगाल में 'ऑपरेशन बरगदर' को छोड़कर उनके पास कोई कानूनी अधिकार नहीं है और कोई भी अन्य राज्य पट्टेदारी के बारे में वास्तव में कोई प्रयास नहीं कर रहा है।

नई फसल बीमा योजना– बहुत ही शानदार विचार – लेकिन यह कैसे पट्टेदार किसानों को सहायता प्रदान करेगी, कैसे यह भूमिहीन लोगों की समस्याओं को, जो खेती के लिए कुछ जमीन ले रहें, संबोधित करेगी ? कोई भी सही जवाब नहीं है। इसलिए, मैं अपनी बात यहीं समाप्त कर रहा हूँ कि कृषि में अल्पकालिक और कामचलाऊ प्रवृति की नीति बनाना बदकिस्मती से एक घटना के घटित होने की संभावना के समान है, आने वाले वर्षों में हम इसके गवाह होंगें। फिर भी संभव नीति में कुछ सुधार के संकेत हैं– हम किसानों के लिए राष्ट्रीय कृषि बाजार की डिजाइनिंग को शामिल करेंगें– यह किसानों की किसी भी तत्काल समस्या की समाधान की पेशकश करने के लिए नहीं किया जा रहा है क्योंकि बराबर होने के लिए यह कम से कम 3 साल का समय लेगा। इस साल केवल 200 मंडियों को जोड़ा जाएगा और किसी भी तरह से किसानों की संख्या जो मंडी के लिए उत्पादन करते हैं वे इस बाजार के बाहर बैठे हुए व्यावासियों के लिए ज्यादा मात्रा में अपनी उपज नही लाएगें, क्योंकि किसी दिल्ली में बैठने वाले को नरसिंहपुर या रायसेन से खरादने के लिए कम से कम एक ट्रक की लोडिंग करानी होगी। इसलिए स्थानीय व्यापारियों का फायदा होना जारी रहेगा और इसके लिए, वास्तव में (बजट में) कुछ नहीं है, जो मेरे द्वारा देखे गये मुद्दों को सरकार की एक मौलिक तरीके में संबोधित करने की मंशा का संकेत देगा। इसलिए निष्कर्ष के तौर पर मैं कहना चाहूंगा, इरादे के लिए इस बजट को दस में से शायद 6 मिलेंगे पर सामग्री के लिए मैं इसको केवल 5 देना चाहूंगा। बहुत बहुत धन्यवाद।